# भारत की परमाणु नीति: सहज या असहज

डॉ. रणजीत कुमार

## १. प्रास्ताविक

भारत विश्व के उन चुनिंदा देशों में से है जिन्हें परमाणु संपन्न कहा जाता है| भारत का परमाणु हथियारों से असहज संबंध रहा है | स्वतंत्रता के शुरुआती दिनों से, भारतीय नेताओं ने परमाणु हथियारों के खिलाफ एक बहुत ही सार्वजनिक और बहुत मुखर रुख अपनाया | लेकिन इनका (जैसे नेहरु) यह भी मानना था कि परमाणु प्रौद्योगिकी की राष्ट्रीय विकास में भूमिका है। कुछ हद तक, उन्होंने यह भी सोचा कि परमाणु हथियार प्रौद्योगिकी की राष्ट्रीय रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, यदि परमाणु निरस्त्रीकरण के प्रयास विफल हो जाता है | ये कुछ विरोधाभासी नीति और समझ आज भी दिखाई देती हैं | 1947 को नेहरू ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा कि "आणविक शक्ति से मानव सभ्यता को नष्ट किया जा सकता है हम इसका प्रयोग शांति क्षेत्र में करना चाहते हैं"|[i] नेहरू परमाणु शास्त्रों द्वारा उत्पन्न खतरे को एक विभीषिका मानते थे और उनका ऐसा विश्वास था कि भारत परमाणु का विकास शांति पूर्ण कार्यो के लिए करेगा | 1948 में भी परमाणु नीति की घोषणा करते हुए नेहरू ने कहा कि "भारत परमाणु शक्ति बाला शांतिपूर्ण राष्ट्र बनेगा"| इस नीति की उत्पत्ति गांधीवादी परंपरा और अहिंसा के आदर्शों पर आधारित है, जो भारत के स्वतंत्रता संग्राम का भी एक अभिन्न अंग थी | लेकिन यह सुझाव देना मूर्खतापूर्ण होगा कि परमाणु हथियारों पर नेहरू का नजरिया भारतीय परमाणु नीति में एकमात्र निर्धारक था। भारत की परमाणु नीति, भारत की अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा स्थिति के साथ-साथ घरेलू चर/कारक(variables) जैसे कि राजनीतिक परिवर्तन, कुलीन वर्ग और नौकरशाही का प्रभाव द्वारा भी प्रभावित था । वास्तव में, परमाणु शक्ति बनाने का भारत का निर्णय देर से ही लिया गया था | 1980 के दशक के बाद, यह स्पष्ट हो गया था कि पाकिस्तान-चीनी तकनीकी के साथ सहायता- ने परमाणु हथियार कार्यक्रम में तेजी से प्रगति की है। नौकरशाही प्रभाव से संबंधित, कुछ रक्षा वैज्ञानिकों ने इसे बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई | हथियारों का कार्यक्रम तब भी जीवित था, जब कोई राजनीतिक समर्थन नहीं था या वास्तव में, सक्रिय विरोध, जबकि अन्य नौकरशाह भारत के घटते परमाणु विकल्पों के बारे में राजनीतिक जागरूकता बनाने के लिए जिम्मेदार थे | फिर भी, ये चर सुझाव देते हैं परमाणु हथियारों के प्रति एक उदार भारतीय दृष्टिकोण का |

## २. भारत का परमाणु कार्यक्रम की उत्पत्ति तथा इतिहास

भारत का परमाणु इतिहास, परमाणु हथियारों के प्रसार के उस क्रमिक मॉडल को अस्वीकार करता है, जब किसी विशाल और परमाणु सम्पन्न शत्रु देश के प्रति असुरक्षा की भावना किसी अन्य देश की परमाणु हथियार हासिल करने की कोशिशों का मुख्य प्रेरक सिद्धांत होती है, जैसा कि सोवियत संघ, चीन और कुछ हद तक यूनाइटेड किंगडम और फ्रांस के मामले में था। भारत ने बिल्कुल सही ढंग से

समझते हुए परमाणु प्रसार के क्रमिक मॉडल को अस्वीकार किया । स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही भारत अपने परमाणु पथ पर आरोहित हुआ । भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग का उद्घाटन सन 1948 में हुआ, सन 1954 तक परमाणु ऊर्जा विभाग एक काफी मजबूत अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रम का वित्त पोषण कर रहा था । इस निर्माणात्मक अवधि में दो व्यक्तियों की भूमिका सबसे प्रभावशाली रही जिनमें नेहरू और और परमाणु भौतिकशास्त्री होमी भाभा थे । अशोक कपूर, भारत के परमाणु इतिहास में सन 1947 से सन 1964 की अवधि को "नेहरू-भाभा वर्ष" कहते हैं, जिसमें भारतीय प्रवृत्तियों तथा नीतियों का निर्माण हुआ जो, आगामी दशकों में भारत के परमाणु व्यवहार के मापदंडों को आकार प्रदान करती है ।[ii]

परमाणु ऊर्जा के आम प्रश्नों और इसके संभावित सैन्य उपयोग को लेकर संविधान सभा में आरंभ में चर्चा हुई थी । परमाणु मुद्दे उन चर्चाओ के साथ मिश्रित हो गए जो भारतीय राज्यत्व को ही परिभाषित करते । गांधी जी की भावना तथा अहिंसा के प्रति उनकी निष्ठा, इन वाद-विवादो पर हावी रही । गांधी जी ने स्वंय परमाणु बम के प्रति घृणा व्यक्त की थी, यह मानते हुए कि यह 'इसका विकास तथा प्रयोग करने वालों का नैतिक विन्द्वंस कर देगा' ।[iii] परमाणु अस्त्रों पर नेहरू के अवस्थिति आमतौर पर उनकी गुटनिरपेक्ष विदेश नीति की भांति, उनकी इस परिकल्पना से जुड़ी हुई थी कि भारत 'एक नैतिक अवस्थिति का दावा करेगा जो कई एशियाई तथा अफ्रीकी देशों के लिए सहायक होगा तथा उनको एकजुट करेगा करेगा जो नीति की वास्तविक स्वतंत्रता का अनुसरण करते थे तथा विरोधी शक्ति गुटों के निर्माण को रोकने के माध्यम से शांति हेतु कार्य करेगा' ।[iv]

निश्चित ही, जैसा कि हम बाद के वर्षों में देखते हैं गुटनिरपेक्षता और अप्रसार तथा अन्य कई चीजों में नेहरू की आस्था सन 1962 में भारत पर चीनी हमले द्वारा फलतः बहुत बुरी क्षतिग्रस्त हो गई थी । निःसंदेह, इस युद्ध ने नेहरू के प्रभुत्व तथा आत्म विश्वास को पूरी तरह क्षतिग्रस्त किया । डेनिस कक्स के अनुसार- "भारतीय नेता कभी भी इस स्तभ्दकारी मनोवैज्ञानिक प्रहार से उबर नहीं पाए । सन 1962 अक्टूबर मध्य तक, नेहरू, जो यद्यपि बूढ़े हो रहे थे, की अंतर्राष्ट्रीय आकृति कायम थी..... एक माह के बाद, नेहरू एक पराजित बूढ़े व्यक्ति थे, उनका देश अमेरिकी सैन्य समर्थन पर आश्रित प्रतीत हो रहा था, उनकी गुटनिरपेक्षता की नीति टुकड़े-टुकड़े हो चुकी थी" ।[v]

किंतु वैश्विक और स्थानीय निरस्त्रीकरण के प्रति वचनबद्धता भारतीय परमाणु नीति में नेहरूवाद की एक महत्वपूर्ण विरासत बनी हुई है । नेहरू ने स्पष्ट रूप से भारत के असैन्य परमाणु कार्यक्रम को अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में देखा । यह एक अधिक विवाद योग्य प्रश्न है कि क्या अंतर्निहित संभावित दोहरा उपयोग एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था । सन 1946 में नेहरू ने 'आशा व्यक्त की कि भारत शांतिपूर्ण प्रयोगों के लिए परमाणु शक्ति विकसित करेगा किंतु उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि जब तक विश्व का गठन

मौजूदा स्थिति के अनुसार रहेगा, हर देश को अपनी सुरक्षा के लिए नवीनतम वैज्ञानिक उपकरणों का विकास और उपयोग करना होगा' ।[vi]

भारत अनुसंधान और बिजली के अंतिम उत्पादन पर केंद्रित असैन्य परमाणु कार्यक्रम बनाने की राह पर बहुत जल्द चल पड़ा। प्रारंभिक साक्ष्य बताते हैं कि भारतीय परमाणु कार्यक्रम पूरी तरह से गैर-सैन्य भूमिका निभाने के लिए बनाया गया था। अनुसंधान को तीन चरणों के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के तहत देश के विशाल थोरियम भंडार को विखंडनीय सामग्री में परिवर्तित करने के लिए तैयार किया गया था। यद्यपि इस बात के संकेत थे कि भारतीय सुरक्षा प्रतिष्ठान को लगता है कि शांतिपूर्ण एकमात्र दृष्टिकोण बदल सकता है, जबकि परमाणु सामग्री का हथियारकरण एक अस्तित्व के खतरे को रोक देगा; यह उस समय विवाद या बहस का एक प्रमुख मुद्दा नहीं था।

यह महत्वपूर्ण है कि भारत-चीन युद्ध आंशिक रूप से क्यूबा मिसाइल संकट के समय परवर्ती घटित हुआ और बम का अनुसरण करने हेतु भारत के प्रलोभन उसी समय प्रबलीकृत हुई जब दोनों महा शक्तियों ने रसातल में झांक कर खुद को संयमित करते हुए शस्त्र नियंत्रण के प्रयासों का नए जोश के साथ अनुसरण किया । भारत ने इस अंतरराष्ट्रीय संवाद के पुनः आरंभ का स्वागत किया, जो शीत युद्ध के आरंभिक वर्षों से मूलतः निष्क्रिय हो गयी थी । सन 1963 में, भारत ने आंशिक परीक्षण प्रतिबंध संधि- जो पर्यावरण में, बाहरी अंतरिक्ष में अथवा अंतर-जलीय परमाणु विस्फोटक परीक्षणों पर प्रतिबंध लगा दी थी, पर हस्ताक्षर किया इस उम्मीद से कि यह परमाणु निशस्त्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा । किंतु सन 1964 में चीनी परमाणु परीक्षणों के प्रति असादृश्य प्रतिक्रियाओं ने अप्रसार के मुद्दे पर भारत तथा महाशक्तियों के बीच की असहमति को और गहरा कर दिया । स्थापित परमाणु अस्त्र संपन्न देशों के लिए चीनी परीक्षण ने एक व्यवहारिक और प्रसार व्यवस्था की स्थापना हेतु प्रोत्साहनों को और बढ़ाया, जबकि भारत के लिए इसने निवारक क्षमता के अधिग्रहण के दबाव को बढ़ाया ।

नेहरू के उत्तराधिकारी के रूप में प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री व्यक्तिगत स्तर पर परमाणु अस्त्र के विकास के विरोध में रहे, किंतु जहां नेहरू तथा भाभा के बीच सार्वजनिक रूप से शायद ही कभी टकराव हुआ हो लेकिन अब भारत के चोटी के परमाणु वैज्ञानिकों ने सार्वजनिक रूप से ऐसा अनुमान प्रस्तुत करना आरंभ किया कि भारत सापेक्षिक रूप से कम मूल्य पर परमाणु बम बनाया जा सकता है (परमाणु विकल्प पर हुए संसदीय वहस के दौरान वित्तीय लागत केंद्रीय मुद्दों में से एक थी) ।[vii] इस प्रकार उनके द्वारा राजनीतिक नेतृत्व को दुर्बल करना आरंभ हुआ । यह भारत के चोटी के परमाणु वैज्ञानिक द्वारा एक महत्वपूर्ण राजनीतिक हस्तक्षेप था । शास्त्री निजी स्तर पर चीन द्वारा परमाणु हमले की स्थिति में, अमेरिकी सहयोग के औपचारिक आश्वासन दिए जाने की संभावना ढूंढ रहे थे तथा यह प्रस्ताव दे रहे थे कि बदले में भारत अपनी परमाणु अस्त्र कार्यक्रम का आरंभ नहीं करेगा ।[viii] किंतु भाभा अमेरिकियों को इस बात के लिए मनाने का प्रयत्न कर रहे थे, कि परमाणु क्षमता संपन्न भारत एक

अच्छा विचार होगा ।[ix] भू-राजनीति में आए बदलाव, भौतिक शास्त्री भावा ने यह तर्क दिया कि चीनी परीक्षणों ने भारत के लिए वैज्ञानिक कौशल को प्रदर्शित करने की चुनौती को तीव्र कर दिया था।

आगे के बर्षों में हम देखते है कि अमेरिका-पाकिस्तान संबंधों ने भारत द्वारा अमेरिकी सुरक्षा आश्वासन प्राप्त करने के सभी प्रयासों को जटिल बना दिया । दक्षिण एशिया में शीतयुद्ध-कालीन अमेरिकी नीतियों ने पश्चिम के साथ गटबंधन करने की पाकिस्तान की स्पष्ट रुचि, भारत के बड़े आकार तथा एक असामान्य एशियाई लोकतंत्र के रूप में उसके दीर्घकालिक सामरिक महत्व के विरुद्ध संतुलित करने का प्रयास किया । इसने अमेरिका के साथ एक सुरक्षा संधि के विचार के राजनीतिक समर्थन को भी दुर्बल कर दिया ।

कुल मिलाकर दो परस्पर संबंधित अंतरराष्ट्रीय कारकों ने 1960 के दशक के दौरान भारत द्वारा बम के अनुसरण के प्रलोभन को बढ़ावा दिया । पहला, चीन के विशिष्ट खतरे का निश्चित रूप धारण करना तथा दूसरा, वैश्विक अप्रसार व्यवस्था(एनपीटी-1968) का उद्भव जिसने परमाणु यथास्थिति को स्थिर करने का प्रयत्न किया, जो भारत के लिए अत्यंत असंतोषजनक था क्योंकि इसने अन्यायपूर्ण वैश्विक तथा क्षेत्रीय शक्ति के संतुलन की पुनः पुष्टि की, भारत को बाहर रोक दिया तथा इसमें 'उदयीमान शक्तियों के लिए परमाणु अस्त्रों के अधिग्रहण के लिए कोई जगह ना होना' निहित था ।[x]

1971 में पाकिस्तान के साथ एक युद्ध, जिसके प्रतिफल में बांग्लादेश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई तथा 'भारत इस महाद्वीप में एक प्रभावी शक्ति के रूप में उभरा'-हालांकि लंबी कालावधि में पाकिस्तान की प्रलयंकारी पराजय ने उसे उत्तेजित किया कि वह अपने बम की खोज को तीव्र करे | उस संघर्ष के दौरान पाकिस्तान के पक्ष में निक्सन-किसिंजर का झुकाव, अमेरिका-भारत संबंधों का नया निम्नतम स्तर था | किंतु उस समय तक मास्को-बीजिंग के बीच एक स्थापित दुश्मनी और सोवियत संघ के साथ भारत द्वारा मैत्री की संधि, संभावित चीनी खतरा के विरुद्ध एक जीवनदायी आश्वासन के रूप में कार्य किया | भारत लड़खड़ाते हुए प्रथम पोखरण परीक्षण तक पहुंचा तथा 'परमाणु विस्फोटक बनाने की प्रदर्शनीय क्षमता के साथ [उभरा] किंतु आगे बढ़ने तथा ऐसा करने हेतु बिना नीति के साथ ।[xi] इस बात की भी कोई रूपरेखा नहीं थी कि सैन्य सिद्धांत तथा बृहत रणनीति के साथ परमाणु अस्त्र किस प्रकार संबद्ध होंगे | भारतीय परीक्षण के प्रति अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया मिश्रित रहे, किंतु आमतौर पर आलोचनात्मक थी |

1974 के "शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट" के बाद, भारत के नीति निर्धारकों ने परमाणु हथियार बनाने की अपनी नई क्षमता का इस्तेमाल हथियार बनाने में करने से परहेज किया और न ही उन्होंने परमाणु हथियार सम्पन्न देश का दर्जा हासिल करने का प्रयास किया। 1980 के दशक के मध्य तक, भारत ने "परमाणु हथियारों से परहेज" की नीति का पालन किया, जब पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रम ने परिपक्व होकर अस्तित्व के लिए खतरे का रूप ले लिया, तो भारत 'उत्प्रेक (कैटलिटिक)' प्रतिक्रिया के लिए तैयार

हो गया। 1988 में, भारत ने डिलिवरबल न्यूक्लियर आर्सेनल (प्रदान करने के लिए तैयार परमाणु शस्त्रागार) हासिल करने का फैसला किया।

पोखरण I तथा पोखरण II के बीच का लंबा अंतराल, बाय्ह प्रतिबंधों खासकर आर्थिक और नेतृत्व की अनियमितता ने भी भूमिका निभाई, साथ ही उस समय नैतिक आधार पर परमाणु अस्त्रों के प्रति प्रबल विरोध प्रकट किया गया | आगे के वर्षों में नेतृत्व के सामने नई क्षेत्रीय सुरक्षा चिंताओं, जिसमें एक तरफ जहां 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत संघ का हस्तक्षेप और आगे के वर्षों में इसका पतन होना, भारत को जो मास्को के द्वारा संरक्षण मिल रहा था वह दुबल हुआ वहीं दूसरी तरफ, पाकिस्तान की परमाणु अस्त्र कार्यक्रम की प्रगति चीन की सहायता से हुई | प्रत्यक्ष अस्त्रीकरण की नीति के लिए निर्भीक नेतृत्व की आवश्यकता होती है, किंतु 1990 के आसपास से जहां भारत के आंतरिक राजनीति में गठबंधन की सरकारों का दौर शुरू हुआ. जिससे रजनितिक नेतृत्व में जोखिम लेने की प्रवृत्ति में कमी आई | बम की रूपरेखा पर वैज्ञानिक प्रगति जारी रही किंतु एक नए विस्फोटक परीक्षण के अभाव में प्रगति वृद्धिशील मात्र रही |

इस समय तक अर्थात 1980 के दशक के अंत तक, भारतीय क्षमताएं में वृद्धि तो हुई लेकिन तैयार शस्त्रागार का अभाव था | दक्षिण एशिया के भीतर तथा बाहर दोनों में यह आम समझ थी कि पाकिस्तान से संघर्ष में परमाणु अस्त्र एक प्रमुख स्थान ले सकता है | सापेक्षिक शांति की अवधि के उपरांत दोनों देशों के मध्य संबंध तीव्रता से बिगड़ने लगे, जब भारत को कश्मीर में एक देशीय विद्रोह का सामना करना पड़ा, जिसे पाकिस्तान ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उकसाया था |[xii] पाकिस्तान का यह भी मानना था कि उसकी अपनी उत्पन्न होने वाली परमाणु क्षमता, भारत को कोई भी गंभीर ने प्रतिक्रिया करने के प्रति उसकी सोच में कमी लाएगी और अंततोगत्वा 'भारत तथा अंतरराष्ट्रीय समुदाय को कश्मीर के विवाद पर दोबारा चर्चा करने हेतु अग्रसर करेगी' |[xiii]

पोखरण II की ओर भारत की वापसी केवल कश्मीर पर तनावों के नवीकरण या पाकिस्तान से परमाणु खतरे के केवल परिणाम ही नहीं थे | 1990 के दशक के मध्य में, एनपीटी की एक समीक्षा हुई, जो क्लिंटन प्रशासन के नेतृत्व में नवीन अप्रसार प्रोत्साहन की हिस्सा थी, को भारत ने इसे उस अंतरराष्ट्रीय प्रयास के रूप में देखा जो भारत के परमाणु विकल्प पर स्थाई रूप से रोक लगाने हेतु था | भारत में परमाणु बम के प्रति भारतीय मनोभाव नैतिकतावादी विरोध से लेकर ग्लानिहीन वकालत तक रहा है | इसका एक उदाहरण, जॉर्ज फर्नांडिस 1974 के परमाणु परीक्षणों के कठोर आलोचक थे, जो आगे चलकर भारत के सबसे मुखर आक्रमणशिलों में से एक के रूप में रूपांतरित हुए तथा जिन्होंने अंततः उस भारत सरकार में रक्षा मंत्री का पदभार संभाला, जिसने 1998 में परमाणु परीक्षण किए | 1960 के दशक अंत तक, भारतीय नेताओं में इस तथ्य के प्रति गुस्सा था, कि एनपीटी को चीन को एक परमाणु शक्ति के रूप में शामिल करने किंतु भारत को बाहर रखने हेतु तैयार किया गया था | अब ऐसा व्यवहार किया गया मानो उसका परमाणु कार्यक्रम पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रम के समतुल्य हो- जिस परमाणु कार्यक्रम को चीन ने भौतिक सहयोग प्रदान किया था तथा अमेरिका ने कई वर्षों तक नजर नजर अंदाज किया था |

करीब 25 वर्ष के बाद फिर से भारत के पूर्व के परमाणु अस्त्र कार्यक्रम में बाह्य उत्तेजक कारकों की वापसी हुई और 1998 का परमाणु परीक्षण अंशतः पूर्वर्ती बर्षो के बदलते सुरक्षा खतरों की प्रतिक्रिया थी, किंतु इससे भी अधिक यह वैश्विक अप्रसार व्यवस्था की जकड़न के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी | इस परीक्षण के पीछे अंतिम तथा आवश्यक घटक था, 1998 के आरंभ में भारतीय राजनीति व्यवस्था में बदलाव | भाजपा (पूर्व में जन संघ), जिसने 1960 के दशक में परमाणु अस्त्रों के विकास की पुरजोर वकालत की थी, के नेतृत्व में गठबंधन सरकार बनी । भाजपा का राष्ट्रवाद तथा बम की वकालत करने का उसका लंबा इतिहास निश्चित ही यह अनुकूल रहा। इससे पूर्व भी कई प्रयास किए गए, जो कई आंतरिक और बाह्य कारणों के कारण कभी पूर्ण नहीं हो सका ।

**३. भारत के परमाणु हथियारों का उद्देश्य**

भारतीय नेताओं ने आमतौर पर परमाणु हथियारों को एक आवश्यक बुराई माना है। प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री और राजीव गांधी ने परमाणु हथियारों के लिए प्रतिबद्धता से बचने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समाधान की मांग की; प्रधान मंत्री मोरारजी देसाई ने हथियार कार्यक्रम को एक समय के लिए बंद कर दिया ।[xiv] यहां तक कि प्रधान मंत्री अटल वाजपेयी, जिन्होंने 1998 में परमाणु परीक्षण का आदेश दिया था, दो दशक पहले अधिक महत्वाकांक्षी थे, 1979 में परमाणु हथियार कार्यक्रम को फिर से शुरू करने के खिलाफ देसाई के साथ मतदान कर रहे थे। कई विश्लेषकों ने निष्कर्ष निकाला है, बढ़ते परमाणु परीक्षण और एक प्रगतिशील रूप से अस्वीकार्य वैश्विक परमाणु व्यवस्था ने 1990 के दशक में नई दिल्ली को एक घोषित परमाणु शस्त्रागार की ओर बढ़ने के लिए मजबूर किया। परमाणु हथियारों के साथ इस असुविधा ने भारत के परमाणु हथियारों को देखने के तरीके को परिभाषित किया है।

1960 और 1990 के बीच के परमाणु हथियारों के बारे में भारतीय बहस में से अधिकांश ने इस बात पर विचार नहीं किया कि भारतीय रणनीति के ढांचे के भीतर परमाणु हथियारों का उपयोग कैसे किया जा सकता है। तर्क और प्रस्ताव बड़े पैमाने पर इसी प्रश्न पर घूमते रहा कि क्या भारत को परमाणु क्षमता की प्राप्ति के लिए जाना चाहिए, न कि भारत को परमाणु हथियारों के साथ क्या करना चाहिए। 1980 के दशक में ही के। सुब्रह्मण्यम और जनरल के. सुंदरजी जैसे कुछ भारतीय रणनीतिकारों ने यह लिखना शुरू कर दिया था कि परमाणु हथियार क्या उपयोगी हो सकते हैं।[xv] यह उस समय निर्णयकर्ताओं के बीच इस तरह के सवालों पर अधिक ध्यान देने के साथ भी मेल खाता है। सुंदरजी और सुब्रह्मण्यम दोनों ने तर्क दिया कि शीत युद्ध के दौरान अमेरिका और सोवियत संघ ने जिस तरह के परमाणु शस्त्रों को विकसित किया था, वे अनावश्यक और बेकार थे। परमाणु निरोध(Nuclear deterrence) कम खर्चे और कम परमाणु अस्त्रों से भी हो सकता था I संक्षेप में, जैसा कि टेलिस ने तर्क दिया है, सुंदरजी और सुब्रह्मण्यम सुझाव दे रहे थे कि परमाणु हथियारों का एक दृष्टिकोण, जो सैन्य उपयोगिता के बजाय अपनी राजनीतिक शक्ति पर जोर देता है, युद्ध-लड़ने की क्षमता के बजाय इसकी प्रतिरोध क्षमता।[xvi] पूर्व भारतीय विदेश मंत्री जसवंत सिंह ने यह तर्क दिया कि, 'परमाणु हथियारों की

राजनीतिक उपयोगिता के बारे में यह दृष्टिकोण, राजनीतिक हथियारों और राजनीतिक स्वायत्तता प्रदान करने वाले परमाणु हथियारों के बारे में दलीलों में भी परिलक्षित होता है।[xvii] आश्चर्य नहीं कि अंततः भारतीय परमाणु निवारक ने छोटी संख्या और प्रतिशोध लेने की क्षमता पर जोर दिया, इसके बजाय के एक ऐसे निवारक बल का निर्माण करना जो अन्य परमाणु शक्तियों के साथ समानता रखता हो।

लेकिन यह धारणा कि परमाणु हथियार राजनीतिक उपकरण हैं, मुख्य रूप से यह है कि भारत परमाणु हथियारों की उपयोगिता को कैसे देखता है। यह भारत के विचारों के बारे में नहीं बताता है कि अन्य राज्य, विशेष रूप से पाकिस्तान, परमाणु हथियार कैसे देख सकते हैं। वास्तव में भारतीय विचारों में दूसरों के हाथों में परमाणु हथियार होने के बारे में अत्यधिक निराशावादी हो सकता है, यह मानते हुए कि अन्य राज्य नई दिल्ली के रूप में जिम्मेदार नहीं हैं या हो सकते हैं। परमाणु प्रसार पर भारत का दृष्टिकोण इस गहन निराशावादी दृष्टिकोण का एक संकेतक है कि भारत के पास अन्य राज्यों के परमाणु हथियारों के उपयोग की संभावना है। हालांकि भारत ने परमाणु अप्रसार संधि (NPT) पर आपत्ति जताई, लेकिन इसने प्रसार(परमाणु) को अंतरराष्ट्रीय स्थिरता के लिए खतरे के रूप में देखा है और चार दशकों और अधिक के अपने "अनुकरणीय अप्रसार रिकॉर्ड (exemplary non-proliferation record)" को बार-बार दोहराया है।[xviii] इस प्रकार परमाणु हथियारों के प्रसार के बारे में भारतीय दृष्टिकोण मौलिक रूप से केनेथ वाल्ट्ज[xix] जैसे प्रसार आशावादियों की दलीलें 'ज्यादा(जितने देशो के पास होगा) और बेहतर हो सकता है'('more may be better'), या 1991 से पहले चीन द्वारा अप्रसार की अवधारणा की कट्टरपंथी अस्वीकृति से अलग है ।[xx] भारतीय अधिकारी यह नहीं सोचते हैं कि परमाणु हथियारों ने इस क्षेत्र को स्थिर कर दिया है; बल्कि उनका मानना है कि पाकिस्तानी हाथों में परमाणु हथियार ने इस क्षेत्र में परमाणु जोखिम को बढ़ा दिया हैं क्योंकि पाकिस्तान को गैर-जिम्मेदार देश माना जाता है। यह विरोधाभास के एक बड़े पैटर्न पर फिट बैठता है जो मानता है कि अन्य शक्तियां, विशेष रूप से, पाकिस्तान उतने जिम्मेदार नहीं होंगे जितना कि भारत।

मिसाइल सुरक्षा के बारे में भारतीय विचार परमाणु हथियारों के बारे में विरोधाभासी भारतीय विचारों का एक और संकेत हैं। यदि परमाणु हथियार अनिवार्य रूप से राजनीतिक हथियार हैं, तो युद्ध लड़ने में प्रयोग करने योग्य नहीं है, मिसाइल डिफेंस के तर्क को समझना मुश्किल लगता है: स्पष्ट रूप से मिसाइल डिफेंस की आवश्यकता केवल तभी होती है जब कोई मानता है कि परमाणु हथियारों का इस्तेमाल होने वाला है। फिर भी, नई दिल्ली ने 1990 के दशक के मध्य से कम से कम एक बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा (बीएमडी)( ballistic missile defence) प्रणाली अपनाई है।[xxi] भारत की एक उपयुक्त बीएमडी

प्रणाली की तलाश पाकिस्तान की मिसाइल वितरण क्षमता के विकास से जुड़ी हुई है, जिसमें चीनी मिसाइलों(M-11) का स्थानांतरण भी शामिल है । परमाणु हथियारों की तरह, नई दिल्ली में राजनीतिक नेतृत्व और विचारधारा में बदलाव के बावजूद बीएमडी प्रणाली की खोज जारी है। कई बार, भारत ने रूसी-निर्मित एस -300, इजरायल-अमेरिकी तीर और अमेरिका निर्मित पैट्रियट बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा प्रणालियों की मांग की है। भारत में विकास के लिए घरेलू बीएमडी प्रणाली के बारे में भी सोचा जाता है, जो अभी भी अंडर-डेवलपमेंट आकाश सरफेस-टू-एयर मिसाइल (एसएएम) के आसपास निर्मित है। नई दिल्ली की एक दशक पुरानी खोज संभवतः असफल रही है क्योंकि भारतीय निर्णयकर्ताओं ने पर्याप्त विचार नहीं किया है कि भारत को किस तरह की प्रणाली की आवश्यकता है।

---

[i] इस दोहरे पहलू पर, देखें इट्टी अब्राहम, द मेकिंग ऑफ द इंडियन एटॉमिक बॉम्ब: साइंस, सेक्रेसी और पोस्टकोलोनियल स्टेट (न्यूयॉर्क: जेड बुक्स, 1998)।

[ii] अशोक कपूर (2000), पोखरण एंड बियोंड : इंडियाज न्यूक्लियर बिहेवियर (नयी दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ), प. 45 I

[iii] कार्टराइट तथा मट्टू, इंडिया एंड द बॉम्ब, प. 6 I

[iv] ज्यूडिथ एम ब्राउन (2003), नेहरू: अ पॉलिटिकल लाइफ (न्यू हैवेन एंड लंदन : येल यूनिवर्सिटी प्रेस), प. 257 I

[v] डेनिस कक्स (1992), इंडिया अँड थे यूनाइटेड स्टेट्स : एस्ट्रेनजेड डेमॉक्रसि, 1947-1991 (वाशिंगटन, डीसी : नेशनल डिफेंस यूनिवरसिटी प्रैस), प. 204 I

[vi] लोर्न जे कैविक (1967), इंडियाज़ केक्स्ट फॉर सेक्युरिटी : डिफेंस पोलिसीज, 1947-1965, प. 27-28, स. 19 I

[vii] पार्कोविच, 'वॉट मेक्स द इंडियन बॉम्ब टिक्क ', प. 28-29 I

[viii] इट्टी अब्राहम, द मेकिंग ऑफ द इंडियन एटॉमिक बॉम्ब: साइंस, सेक्रेसी और पोस्टकोलोनियल स्टेट, प. 125-26 ।

[ix] पूर्वोक्त

[x] पॉल, इंडिया, द इंटरनेशनल सिस्टम एंड न्यूक्लियर वेपन्स' प. 86 I

[xi] पार्कोविच, 'वॉट मेक्स द इंडियन बॉम्ब टिक्क ', प. 34 I

[xii] एस पॉल कपूर (2007), डेंजेरस डेटेरेंट : न्यूक्लियर वेपन्स प्रोलिफ्रेसन एंड कन्फ़्लक्त इन साउथ एशिया (स्टैनफोर्ड, कैलिफोर्निया: स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), प. 99 I

[xiii] पूर्वोक्त I

[xiv] हालांकि एक दशक पुराना, पेरकोविच का काम अभी भी भारतीय परमाणु कार्यक्रम का सबसे अच्छा इतिहास है। जॉर्ज पेरकोविच, भारत का परमाणु बम: वैश्विक प्रसार पर प्रभाव (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999)। यह भी देखें, राज चेंगप्पा, वेपन ऑफ पीस: द न्यू स्टोरी ऑफ इंडियाज क्वेस्ट \ ए टू न्यूक्लियर पावर (नई दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स, 2000); अब्राहम, द मेकिंग ऑफ द इंडियन एटॉमिक बम; और भारत कर्नाड, परमाणु हथियार और भारतीय सुरक्षा: रणनीति की वास्तविक नींव, दूसरा संस्करण। (नई दिल्ली: मैकमिलन, 2005)।

[xv] लेफ्टिनेंट जनरल के। सुंदरजी, "परिचय", परम्परागत संतुलन पर परमाणु विषमता के प्रभाव में, कॉम्बैट पेपर्स नं। 1 (महू: कॉलेज ऑफ कॉम्बैट, मई 1981); के। सुब्रह्मण्यम, "न्यूक्लियर फ़ोर्स डिज़ाइन और भारत के लिए न्यूनतम निवारक रणनीति", भारत कर्नाड में, भविष्य में इंपेरील्लेड: 1990 के दशक में भारत की सुरक्षा (नई दिल्ली: वाइकिंग, 1994), प. 176-95।

[xvi] टेलिस, भारत का उभरता हुआ परमाणु आसन(posture), प. 261-96

[xvii]"विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह के साथ साक्षात्कार," <http://meaindia.nic.in/interview/1999/11/25i01.htm>; और "ईएएम का साक्षात्कार सूडेसट्सचे ज़िटुंग, जर्मनी के साथ," <http: // meaindia.nic.in/interview/1999/10/10i01.htm>

[xviii] "इंडो-यूएस रिलेशंस: एन एजेंडा फॉर द फ्यूचर", विदेश सचिव श्री श्याम सरन का हेरिटेज फाउंडेशन, वाशिंगटन डीसी का 30 मार्च, 2006 का संबोधन, <http://www.indianembassy.org/newsite/ press_release / 2006 / मार्च / 43.asp>।

[xix] केनेथ एन वाल्ट्ज, द स्प्रेड ऑफ न्यूक्लियर वेपंस: मोर मे बी बेटर, एडेल्फी पेपर नं. 171 (लंदन: अंतर्राष्ट्रीय सामरिक अध्ययन संस्थान, 1981)।

[xx] मिंगक्वान झू, "चीन के परमाणु अप्रसार नीति का विकास," अप्रसार समीक्षा, वॉल्यूम. 4, no. 2 (शीतकालीन 1997), प. 40- 48

[xxi]राजेश राजगोपालन, "भारत: सबसे बड़ा लोकतंत्र और सबसे छोटी बहस ?," समकालीन सुरक्षा नीति, खंड. 26, सं. 3 (दिसंबर 2005), प. 605-20. एक अलग दृष्टिकोण के लिए, हर्ष वी. पंत, “भारत ने मिसाइल डिफेंस का विमोचन किया,” रक्षा अध्ययन, खंड. 5, नं. 2 (जून 2005), प. 228-46 I